अप्रेल १९९८ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धारण करे सो धर्म

(जी-टीवी पर क्रमशः चौवालीस कड़ियों में प्रसारित पूज्य गुरुजी के प्रवचनों की **प्रथम कड़ी**)

धर्म प्रेमी सज्जनो सन्नारियो,

आओ, एक बार फिर समझें, धर्म क्या है? धर्म का शुद्ध स्वरूप क्या है? धर्म का सार्वजनीन स्वरूप क्या है? धर्म का सार क्या है? धर्म के सार को नहीं समझेंगे, तो उसे धारण कैसे करेंगे? धारण नहीं करेंगे तो धर्म का लाभ कैसे प्राप्त होगा? धर्म केवल श्रुति-विलास का विषय बन कर रह जायगा, वाणी-विलास का विषय बन कर रह जायगा, बुद्धि-विलास का विषय बन कर रह जायगा, चर्चा-परिचर्चा का विषय बन कर रह जायगा, वाद-विवाद का विषय बन कर रह जायगा। बहुत होगा तो मनोरंजन का विषय बन कर रह जायगा, मन-बहलाव का विषय बन कर रह जायगा। धर्म के सार से वंचित रह जायेंगे। धर्म के लाभ से वंचित रह जायेंगे।

धारण करें तो ही धर्म है। धारण किसे करें? किसे धर्म कहें? बड़ी सीधी-सी व्याख्या है, बड़ी सरल व्याख्या है और हमने उसे कितना उलझा दिया! उलझा दिया तो दुःखी हो गये, धर्म से वंचित हो गये। धर्म की सबसे सरल व्याख्या – निर्मल चित्त का आचरण ही धर्म है, मैले चित्त का आचरण ही अधर्म है। धर्म है तो सुख, शांति और चैन है। अधर्म है तो दुःख ही दुःख, अशांति ही अशांति है; बेचैनियां ही बेचैनियां हैं।

जब चित्त निर्मल होता है तो उस निर्मल चित्त का आचरण बड़ा कल्याणकारी होता है। वह सदाचरण होता है। अपना भी भला करता है, औरों का भी भला करता है। अपना भी मंगल करता है, औरों का भी मंगल करता है। अपना भी कल्याण करता है, औरों का भी कल्याण करता है। अपने लिए भी सुख-शांति का निर्माण करता है, औरों के लिए भी सुख-शांति के वातावरण का निर्माण करता है। शुद्ध धर्म आचरण में उतरे तो मंगल ही मंगल, कल्याण ही कल्याण होता है। इसके विपरीत जब मन मैला हो जाता है, विकारों से विकृत हो जाता है। उसमें राग, द्वेष और दुर्भावना जागती है; उसमें क्रोध, ईर्ष्या, मात्सर्य और अहंकार जागता है; वासना जागती है तो बहुत मैला हो जाता है।

मैले चित्त का आचरण अमंगलकारी ही होता है क्योंकि वह दुराचरण होता है। उससे अपना भी, औरों का भी अमंगल ही होता है। अपने को भी, औरों को भी पीड़ा ही होती है। मैले चित्त का आचरण पीड़ा, दुःख और संताप ही पैदा करेगा। धर्म की यह सीधी-सीधी बात, इसे भुला करके किसी अन्य जंजाल में पड़ जायँ, किसी कर्मकांड को धर्म मानने लगें, किसी व्रत-उपवास या तीज-त्यौहार को धर्म मानने लगें। किसी पर्व-उत्सव या वेश-भूषा को धर्म मानने लगें। किसी रीति-रिवाज या दार्शनिक मान्यता को धर्म मानने लगें और धर्म के सार को समझें नहीं, धर्म का सार जीवन में उतरे नहीं, आचरण में उतरे नहीं, तो धोखा ही धोखा है, धोखा ही धोखा है।

धर्म जब जीवन में उतरता है, व्यवहार में उतरता है तो ही मंगलकारी होता है। अन्यथा धर्म – पोथियों का धर्म, ग्रंथों का धर्म, इस तरह के प्रवचनों का ही धर्म बना रहे और जीवन में नहीं उतरे, व्यवहार में नहीं उतरे तो बड़े दुर्भाग्य की बात होती है। धर्म धारण करे तो जीवन में सुख-शांति प्राप्त होती है और धारण करे नहीं, केवल चर्चा ही करे, केवल बातें ही करे तो कहां सुख, कहां शांति?

अपने भारत के एक महान संत, एक समझदार संत ने कहा। संत होगा तो समझदार ही होगा। क्या कहता है भारत का यह संत –

"कथै, बदै, सुणै सब कोई; कथै, बदै, सुणै सब कोई"।

'कथै' – खूब कहते हैं। कहने वालों को कहने का व्यसन लग गया। खूब धर्म की बातें करेंगे। 'बदै' – बोलने वालों को बोलने का व्यसन लग गया। खूब धर्म ही धर्म की बातें बोलेंगे और 'सुणै' – सुनने वाले को सुनने का व्यसन लग गया। खूब सुनते ही सुनते हैं। पर भाई, केवल बोलने से, केवल सुनने से बात नहीं बनती।

बोलने से, सुनने से प्रेरणा से जागे। बोलने से, सुनने से मार्गदर्शन मिले और फिर उस मार्ग पर चलना शुरू करदे। कदम-कदम चलना शुरू करदे तो धर्म धारण करने लगा। धारण नहीं करे, केवल बात, केवल चर्चा ही करे। केवल विवाद, केवल व्याख्या ही करे तो भाई, क्या मिलेगा? इसीलिए संत ने आगे कहा –

"कथै न होई, बदै न होई, सुणै न होई
– कीयै होई, ओ कीयै होई॥"

"कथै न होई" – कहने से कुछ नहीं होता। "बदै न होई" – केवल बोलने से भी कुछ नहीं होता। "सुणै न होई" – केवल सुनने से भी कुछ नहीं होता। तो किससे होता है? तो कहता है – **"कीयै होई, ओ कीयै होई"** – जब करता है याने जब धर्म धारण करता है तो कल्याण होता है। धारण नहीं करे और केवल उसकी चर्चा ही करे तो भाई, कितने बड़े दुर्भाग्य की बात हुई!

सर्दी का मौसम है। एक आदमी ठंड के मारे थर-थर कांप रहा है, धूज रहा है। खूंटी पर उसका कोट टँगा है। बहुत बढ़िया ऊनी कोट टँगा है और वह उसकी चर्चा करता है। उसकी व्याख्या और प्रशंसा करता है। यह मेरा कोट, ऐसा मरीना वूल का बना हुआ कोट, इतना गर्म कोट! चर्चा ही करता है और ठंड से धूजे जा रहा है, उस कोट को पहनता नहीं। उस ठंड के दुःख से छुटकारा नहीं पाता। तो भाई, दुर्भाग्य ही है ना! इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या होगा?

एक प्यासा आदमी है। प्यास के मारे कंठ सूख रहे हैं। बहुत व्याकुल है। समीप पानी भी पड़ा है और यह पानी की प्रशंसा करता है। पानी के गुण गाता है। पानी को नमस्कार करता है। कूए को नमस्कार करता है। ऐ, कूए महाराज, तुमने ऐसा अच्छा पानी दे दिया। लेकिन पीता नहीं। एक बूंद पानी मुँह में नहीं डालता। अरे भाई, तो दुर्भाग्य ही है ना! इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या होगा!

भूखा आदमी, भूख के मारे व्याकुल है। पास में भोजन की थाली पड़ी है। भोजन की प्रशंसा करता है, व्याख्या करता है – कितना उम्दा भोजन, कितना बढ़िया भोजन! भोजन को नमस्कार

भी करता है। उस किसान को नमस्कार करता है, जिसने अन्न उपजाया। लेकिन भोजन का एक कौर अपने मुँह में नहीं डालता। भूख के मारे वैसे ही तड़फता रहता है। अरे, इससे बड़ा और क्या दुर्भाग्य होगा!

एक रोगी आदमी है। रोग के मारे बड़ा बेचैन है, बड़ा अशांत है, बड़ा दुखियारा है। समीप ही दवा पड़ी है, औषधि पड़ी है और वह उस औषधि की प्रशंसा करता है। उसके गुण गाता है, उसे नमस्कार करता है। उस वैद्य को, उस डाक्टर को नमस्कार करता है जिसने यह दवा दी। लेकिन सेवन नहीं करता। दवा अपने मुँह में नहीं डालता। तो दुखियारा का दुखियारा ही रहा। अरे, इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या होगा!

ठीक इसी प्रकार जब हम धर्म को केवल वार्त्तालाप का विषय बना लें, केवल बुद्धि-विलास का विषय बना लें। धर्म को केवल श्रुति-विलास का विषय बना लें, वाणी-विलास का विषय बना लें। उस पर चर्चा ही चर्चा करें, बहस ही बहस करें, वाद-विवाद ही वाद-विवाद करें और फिर लगें झगड़ने – मेरा धर्म सही, तेरा धर्म गलत। मेरा धर्म ऐसा, तेरा धर्म ऐसा। इसी बात पर लड़ने-झगड़ने लगें, मारपीट- हत्याएं करने लगें, आग लगाने लगें, चारों ओर अशांति ही अशांति फैलाने लगें। बात धर्म की कर रहे हैं –यह मेरा धर्म, यह तेरा धर्म। मेरा धर्म इतना महान, तेरा धर्म ऐसा गया-गुजरा। अरे, तेरा धर्म कैसे महान हुआ भाई, तूने धारण तो नहीं किया ना? तूने कभी देखा नहीं अपने भीतर। क्या तेरा चित्त निर्मल हुआ? क्या तेरे चित्त के विकार दूर हुए?

चित्त निर्मल होगा तो धर्म आचरण में उतरेगा। तो धर्म हुआ। तेरा चित्त ही निर्मल नहीं हुआ। चित्त ही क्रोध, द्वेष और दुर्भावना से भरा है। जब किसी से लड़ता है तो क्रोध ही जगाता है ना! द्वेष ही जगाता है ना! दुर्भावना ही जगाता है ना! जिसको मेरा कहता है उसके प्रति आसक्ति जगाता है ना! धर्म के नाम पर क्या करने लगा! क्यों ऐसा होने लगा? क्योंकि धर्म धारण करना भूल गये।

धर्म हमेशा सार्वजनीन होता है, सबका होता है; असीम और अपरिमित होता है। धर्म को जब ससीम बना देते हैं, छोटा बना देते हैं, परिमित बना देते हैं, तब धर्म नहीं रहता। धर्म सबका है। सार्वजनीन है तो धर्म है। सबके लिए एक जैसा कल्याण करने वाला है। जो धारण करे उसी का कल्याण हो जाय। वह अपने आपको चाहे जिस नाम से पुकारे। वह अपने आपको हिंदू कहे या बौद्ध, जैन कहे या ईसाई, मुस्लिम कहे या सिक्ख, पारसी कहे या यहूदी –चाहे जिस नाम से पुकारे लेकिन धर्म धारण करे। धर्म धारण करे –माने चित्त को निर्मल करे और जीवन का आचरण निर्मल चित्त का ही आचरण हो।

चित्त जब निर्मल होता है तो दुराचरण कर ही नहीं सकता, किसी की हानि कर ही नहीं सकता। न अपने आपको संतापित कर सकता है न औरों को। निर्मल चित्त अपने आपको भी सुख-शांति से भर देता है, औरों के लिए भी सुख-शांति का निर्माण करता है। निर्मल चित्त का धर्म सार्वजनीन होता है, सबका होता है। वह सार्वदेशिक, सार्वभौमिक होता है। विश्व के किसी कोने में रहने वाला कोई भी व्यक्ति अपने चित्त को निर्मल कर ले और फिर देखे कि जीवन में धर्म का आचरण अपने आप होने लगा, जीवन ही बदल गया, सुख-शांति से भर गया।

धर्म सर्वकालिक होता है, सनातन होता है। सनातन होता है तो ही धर्म होता है। किसी युग का व्यक्ति हो – भूतकाल का हो, वर्तमान का हो, भविष्य का हो। किसी काल का कोई व्यक्ति हो, अपने मन को निर्मल कर लेता है और निर्मल चित्त से आचरण करने लगता है तो अपना भी कल्याण साधता है, औरों का भी कल्याण साधता है। ऐसा व्यक्ति कोई हो, कहीं का हो, किसी समय का हो। ऐसे निर्मल चित्त व्यक्ति का आचरण – धर्माचरण होता है। अन्यथा धर्म के नाम पर हो सकता है कोई धोखा हो।

कर्मकांड भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। भिन्न-भिन्न समाज के, भिन्न-भिन्न समुदाय के, भिन्न-भिन्न संगठन के, भिन्न-भिन्न जमात के भिन्न-भिन्न संप्रदाय के भिन्न-भिन्न कर्मकांड हो सकते हैं। भिन्न-भिन्न वेश-भूषाएं हो सकती हैं। भिन्न-भिन्न व्रत-उपवास हो सकते हैं। भिन्न-भिन्न तीज-त्योहार हो सकते हैं। भिन्न-भिन्न पर्व-उत्सव हो सकते हैं। भिन्न-भिन्न रीति-रिवाज हो सकते हैं। भिन्न-भिन्न दार्शनिक मान्यताएं हो सकती हैं। इन सारी विभिन्नताओं का धर्म से कोई लेन-देन नहीं। धर्म अभिन्न होता है, सार्वजनीन होता है।

चित्त की निर्मलता को कैसे कहेंगे, यह हिंदूओं के चित्त की निर्मलता है, यह बौद्धों के चित्त की निर्मलता है, कि जैनियों के चित्त की निर्मलता है, कि मुसलमानों के चित्त की निर्मलता है, कि ईसाईयों के चित्त की निर्मलता है? अरे, निर्मलता, निर्मलता है भाई! उस पर क्या लेबल लगाओगे रे! और उस निर्मलता की वजह से जो भीतर सुख-शांति महसूस होने लगी, वह सुख-शांति सार्वजनीन है ना! क्या लेबल लगाओगे? अबके जो सुख-शांति आयी, यह तो हिंदू सुख-शांति आयी। ओ, अबकी आयी – यह मुस्लिम आयी, यह बौद्ध आयी, यह जैन आयी! ऐसा नहीं होता ना! सार्वजनीन है तो धर्म है।

ठीक इसी प्रकार अधर्म भी सार्वजनीन है। चित्त मैला कर ले। उसमें द्वेष भर ले, दुर्भावना भर ले, कुटिलता भर ले, ईर्ष्या भर ले, मात्सर्य भर ले, अहंकार भर ले। कोई विकार भर ले, व्याकुल हो जायगा। अपने को हिंदू कहने वाला भी व्याकुल हो जायगा, अपने को मुसलमान कहने वाला भी व्याकुल हो जायगा। अपने को बौद्ध, ईसाई, सिक्ख, यहूदी, पारसी कहने वाला, कोई हो, व्याकुल हो जायगा। अपने को ब्राह्मण कहे, क्षत्रिय कहे, वैश्य कहे, शूद्र कहे – विकार जगाये तो एकदम व्याकुल हो जायगा। अपने को भारतीय कहे, पाकिस्तानी कहे, बर्मी कहे, सीलोनी कहे, अपने को अमरीकी कहे, रूसी कहे, जापानी कहे, चीनी कहे। कोई विकार जगाया तो व्याकुल हो गया। यह हो नहीं सकता कि मैं अपने भीतर क्रोध भी जगाऊं और बड़ी सुख-शांति महसूस करने लगूं। अरे भाई, यह होने वाली बात नहीं!

ठीक इसी प्रकार मैं चित्त में निर्मलता जगाऊं तो निर्मलता जगाते ही सद्गुण जागने लगे – मैत्री जागने लगी, करुणा जागने लगी, सद्भावना जागने लगी। मन में मैत्री भी जागे, करुणा भी जागे, सद्भावना भी जागे और उसके साथ व्याकुलता भी जागे –यह असंभव बात है। यह हो नहीं सकती। जैसे ही चित्त निर्मल हुआ,

मैत्री से भरा, करुणा से भरा, सद्भावना से भरा तो शांति से भर गया, सुख से भर गया, कल्याण से भर गया, मंगल से भर गया। चित्त में निर्मलता धारण करें तभी ये सद्गुण जागते हैं। धारण न करें और केवल अपने आपको धार्मिक होने के धोखे में रखें तो भाई, धर्म का लाभ मिलता नहीं!

एक आदमी बड़ी लंबी चोटी रखता है और मन में क्रोध जगाता है, द्वेष जगाता है तो उतना ही व्याकुल होगा; जितना एक आदमी लंबी दाढ़ी रखता है। उतना ही व्याकुल होगा, जितना एक आदमी लंबे बाल रखता है, लंबे केश रखता है। उतना ही व्याकुल होगा, जितना एक आदमी सिर मुँडाये है। कुछ फर्क नहीं पड़ने वाला ना! इस बाह्य आडंबर से क्या फर्क पड़ा? अरे, हमने धर्म धारण किया कि नहीं? अगर हमने धर्म धारण किया तो व्याकुलता से दूर हुए। अन्यथा व्याकुलता ही व्याकुलता, व्याकुलता ही व्याकुलता। मैंने पीले कपड़े पहन लिये, कि मैंने लाल कपड़े पहन लिये, कि मैंने काले कपड़े पहन लिये, कि मैंने सफेद कपड़े पहन लिये या मैंने सारे कपड़े उतार दिये लेकिन मन में तो मैल जगाता हूं। मन में क्रोध जगाता हूं, द्वेष जगाता हूं तो कुदरत इस बात को नहीं देखती कि इस आदमी ने कैसा वेश बनाया है। वह तो दंड देगी ही, तत्काल दंड देगी। तत्काल व्याकुलता से भर जायेंगे, अशांति से भर जायेंगे।

मैं यह कर्मकांड करता हूं कि वह कर्मकांड करता हूं, यह तीज-त्योहार मनाता हूं कि वह तीज-त्योहार मनाता हूं। यह पर्व-उत्सव मनाता हूं कि वह पर्व-उत्सव मनाता हूं। यह दार्शनिक मान्यता मानता हूं कि वह दार्शनिक मान्यता मानता हूं या कोई दार्शनिक मान्यता नहीं मानता। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। बड़ी सीधी-सरल बात है धर्म की –जैसे ही अपने मन को मैला किया कि धर्म से दूर हो गये और दंड मिलने लगा। कुदरत की ओर से, यूं कहो परमात्मा की ओर से दंड मिलने लगा, तत्काल दंड मिलने लगा। और जैसे ही चित्त को विकारों से मुक्त किया, मैल दूर करके निर्मल किया –तो पुरष्कार मिलने लगा, बड़ी शांति मिलने लगी, बड़ा सुख मिलने लगा। व्यक्ति कोई हो, कैसा भी हो। तो भाई, धर्म धारण करें!

जब संसार में कोई व्यक्ति शुद्ध होता है, बुद्ध होता है, अरहंत होता है, स्थितप्रज्ञ होता है, अनासक्त होता है, वीतराग होता है, वीतद्वेष होता है, वीतमोह होता है, भवविमुक्त हो जाता है तो अत्यंत करुणा से भर उठता है। और करुणा से भर करके शुद्ध धर्म का ज्ञापन करता है। केवल ज्ञापन करके ही नहीं रह जाता, इसे कैसे धारण करो, यह सिखाता भी है। चित्त को निर्मल रखना चाहिए, यह उपदेश देने वाले तो बहुत होंगे, पर चित्त को कैसे निर्मल करें! जड़ों तक अपने चित्त के दूषित स्वभाव को कैसे बदल लें! जड़ों तक विकारों को निकाल बाहर करें –इसकी कोई विद्या होती है, और वह विद्या सीखनी होती है। इसका कोई तरीका होता है, वह सीखना होता है।

मैं अपने शरीर को निरोगा रखना चाहता हूं, सबल रखना चाहता हूं, स्वस्थ रखना चाहता हूं तो मुझे शरीर की कोई कसरत करनी होती है, कोई व्यायाम करना होता है। वह कसरत, व्यायाम सीखने के लिए किसी व्यायामशाला में जाना होता है। मैं अनपढ़ हूं, मुझे पढ़ना है तो पढ़ना सीखने के लिए मुझे किसी पाठशाला में जाना होता है। मुझे डाक्टरी सीखनी है तो किसी मेडिकल युनिवर्सिटी में जाना पड़ता है। इसी तरह से कोई विद्या सीखनी हो तो कहीं जा करके सीखनी होती है।

हमें चित्त को निर्मल करने की विद्या सीखनी हो और उसे सीखने के लिए हम कोई प्रयत्न नहीं करें, किसी के पास जा करके सीखें नहीं, तो भाई, अपने आप चित्त निर्मल होता नहीं, कदापि नहीं। हर व्यक्ति को परिश्रम करना होता है, पुरुषार्थ करना होता है, पराक्रम करना होता है। बड़ी मेहनत करनी होती है और अपने तरीके से, सही तरीके से करनी होती है। बस, वह करने लगे तो धर्म जीवन में उतरेगा ही। जितना-जितना मैल निकलता चला गया, उतना-उतना धार्मिक हो गया। बड़ा सुखी हो गया। बड़ा शांत हो गया। धर्म धारण करना सीख जाय तो मंगल ही मंगल, कल्याण ही कल्याण होता है। जो धारण करे उसी का मंगल, उसी का कल्याण! उसी की स्वस्ति-मुक्ति! सबकी स्वस्ति-मुक्ति, स्वस्ति-मुक्ति!